प्रकाश जैन

वर्तमान युग में महावीर के उपदेशों की सार्थकता।

सन् 1969 में जब महात्मा गाँधी का जन्म-शताब्दी समारोह देश-विदेश में मनाया गया था, कुछ व्यक्तियों ने खुले आम कहा था कि अब लोगों के सोचने का ढंग कुछ और हो गया है, समाज की मान्यताएँ बदल गई हैं, देश का मुंह दूसरी ओर हो गया है, ऐसी दशा में गाँधी जी के नाम और सिद्धान्तों का ढिंढोरा पीटने से लाभ क्या है ? उन लोगों की धारणा यह थी कि गाँधीजी के उसूल पुराने पड़ गये हैं, और आज युग के लिए उनकी कोई सार्थकता नहीं है। पाठक भूले नहीं होंगे कि इस संदर्भ में बहुत-सी गोष्ठियाँ आयोजित की गईं, समाचार-पत्रों में लेख लिखे गये, काफी साहित्य का प्रकाशन किया गया और यह सिद्ध करने की भरपूर कोशिश की गई कि गाँधीजी के सिद्धान्त आज भी उपयोगी हैं और कि वे युग-युगान्तर तर्क संगत एवं उपयुक्त रहेंगे।

जिनके निधन को मुश्किल से 27 वर्ष हुए हैं, उन गाँधीजी के बारे में जब ऐसा कहा जा सकता है, तब भगवान महावीर के विषय में यही बातें कही जाएँ तो आश्चर्य क्या, जिनके निर्वाण को 2500 वर्ष हो गये। सच यह है कि हमारे देश में महापुरुषों के सिद्धांतों की मूल आत्मा को समझकर आत्मदर्शन करने का प्रयास बहुत कम हुआ है। यही कारण है कि महापुरुषों का निरन्तर गुणानुवाद करके भी हम उनके आत्म-शोधक तथा लोककल्याणकारी मार्ग का अनुसरण नहीं कर पाये।

भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव को 13 नवम्बर, 1974 से 15 नवम्बर 1975 तक देश विदेश में मनाने की योजना बड़ी भावना, उमंग और उत्साह से बनाई गई। राष्ट्रीय समिति बनी, जैन महासमिति का गठन हुआ, विभिन्न प्रान्तों में समितियों का निर्माण किया गया, छोटी-बड़ी अन्य संस्थाओं ने भी अपने-अपने क्षेत्र में, अपने-अपने साधनों के अनुसार इस महायज्ञ में अपना हविर्भाग अर्पित करने की चेष्टाएँ कीं। योजनाएँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बनीं, उन्हें क्रियान्वित करने के लिए निजी एवं सामूहिक प्रयास भी हुए। कुछ योजनाएं पूरी हुईं, कुछ अधूरी रह गईं, शायद भविष्य में पूरी हों। लेकिन कुल मिलाकर मुझे ऐसा लगता है कि इतनी भावना और साधना के बाद भी राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन पर महावीर और उनके सिद्धान्तों का जो प्रभाव पड़ना चाहिए, वह पड़ा दिखाई नहीं देता।

इसका मुख्य कारण यह है कि महावीर की भूमिका के बाह्यरूप पर तो बल दिया गया, लेकिन उनके आन्तरिक रूप को गहराई से समझने और पकड़ने की कोशिश नहीं की गई। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज युग की धारा अत्यन्त उद्दाम गति से भौतिकता की ओर प्रवाहित हो रही है और उसकी दिशा को बदलना आसान नहीं है, फिर भी यदि महावीर के सिद्धान्तों के स्थूल प्रतिपादन के साथ-साथ उनकी भूमिका को समझकर उसका वैयक्तिक एवं सामूहिक जीवन में प्रवेश कराने के लिए प्रयत्न किये गये होते तो आज स्थिति कुछ और ही होती।

आइये, आज के बदले संदर्भों में हम महावीर के उपदेशों की उपयोगिता को देखने और समझने का प्रयत्न करें।

पाठक जानते हैं कि महावीर राज-घराने में जन्मे थे। उनके चारों ओर विपुल सम्पदा थी, अपार वैभव था, अतुलित सत्ता थी; लेकिन धन-सम्पदा अथवा सत्ता के द्वारा उन्होंने समाज का भला करने की बात क्यों नहीं सोची ?

इस प्रश्न का उत्तर उनके जीवन की एक घटना देती है।

एक दिन महावीर कहीं जा रहे थे। अचानक बस्ती के एक भवन से उन्हें किसी का क्रन्दन सुनायी दिया। राजपुत्र ने अपने परिचारक से पूछा, "यह क्या है? जाओ पता लगाकर आओ।" परिचारक गया, थोड़ी देर में लौटकर उसने बताया, 'मालिक अपने दास को पीट रहा है।"

"क्यों ?" महावीर ने आकुल होकर पूछा।

"इसलिए कि वह खरीदा हुआ है।"

क्या हमारे शासन ने यह अधिकार दे रखा है कि एक आदमी दूसरे की खरीद ले ?"

"जी हाँ, खरीदने का ही नहीं, बल्कि दास को मारने तक का भी अधिकार शासन ने दे रखा है।

महावीर का सम्वेदनशील हृदय इस घटना से मर्माहत हो उठा। ऐसा शासन किस काम का, जो एक व्यक्ति को दूसरे को खरीदने और मारने का अधिकार दे ?

हमारा इतिहास बताता है कि अरिष्टनेमि पशुओं का चीत्कार सुनकर अहिंसा के मार्ग के पथिक बन गये थे, पार्श्वनाथ ने जलती लकड़ी में सांपों के एक जोड़े को अर्द्धदग्ध देखकर जीवन की नई दिशा में मोड़ दिया था, बुद्ध संसार से रोग, जरा और मृत्यु की मुक्ति का मार्ग खोजने के लिए गृह-त्याग कर साधना में लीन हो गये थे। महावीर के मन में भी इस घटना से राजसत्ता के प्रति विद्रोह की भावना जागृत हुई और उनका मन ऐसा जीवन जीने के लिए आतुर हो उठा, जिसमें न कोई किसी का स्वामी हो, न कोई किसी का दास हो, बल्कि जिसमें मानवीय मूल्यों की प्रधानता हो। धन-सम्पदा में बचपन से ही उन्हें रस नहीं था, इस छोटी-सी घटना ने उन्हें सत्ता से भी विमुख कर दिया। उनके हृदय में स्वतंत्रता की लौ प्रदीप्त हो उठी। मुनि नथमल जी 'श्रमण महावीर' में लिखते हैं, "वह लौ इतनी उद्दाम थी कि, ऐश्वर्य की हवा की प्रखर झांकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी उसे बुझा नहीं पा रही थी। कुमार घर की दीवारों में बन्द रहकर भी मन की दीवारों का अतिक्रमण करने लगे। किसी वस्तु में बद्ध रहकर जीने का अर्थ उनकी दृष्टि में था स्वतन्त्रता का हनन। उन्होंने स्वतन्त्रता की साधना के तीन आयाम एक साथ खोल दिये, एक था अहिंसा, दूसरा सत्य और तीसरा ब्रह्मचर्य। अहिंसा की साधना के लिए उन्होंने मैत्री का विकास किया। उनसे सूक्ष्म जीवों की हिंसा भी असंभव होगी। सत्य की साधना के लिए वे ध्यान और भावना का अभ्यास करने लगे। मैं अकेला हूँ, इस भावना के द्वारा उन्होंने अनासक्ति को साधा और उसके द्वारा आत्मा की उपलब्धि का द्वार खोला। ब्रह्मचर्य की साधना के लिए उन्होंने अस्वाद का अभ्यास किया। शरीर के ममत्व से मुक्ति पा ली, अब्रह्मचर्य की आग अपने-आप बुझ गई।"

वर्तमान युग में हम धन-सम्पत्ति और सत्ता की प्रभुता देखते हैं, लेकिन महावीर ने उन्हें त्यागा. क्योंकि उन्होंने इस सचाई को भली प्रकार हृदयंगम कर लिया कि सच्चा सुख ऐसा जीवन व्यतीत करने में है, जिसमें छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन आदि का भेद-भाव न हो और व्यक्ति आत्मिक सम्पदा का उत्तरोत्तर विकास करे।

हमारी सारी मनोभूमिका आज इस प्रकार की हो गयी है कि हम पदार्थ को सुख का साधन मान बैठे हैं और उसी की उपासना कर रहे हैं। हम यह भूल गये हैं कि जो नाशवान है वह स्थायी सुख कभी दे नहीं सकता। महावीर ने कहा था, "यदि धनधान्य से परिपूर्ण यह सारा लोक भी किसी एक मनुष्य को दे दिया जाए, तो भी उसे सन्तोष होने का नहीं।"

"हाथ में दीपक होने पर भी जैसे उसके बुझ जाने पर सामने का मार्ग दिखाई नहीं देता, उसी तरह धन के असीम मोह में मूढ़ मनुष्य न्यायमार्ग को देखता हुआ भी नहीं देख सकता।" इसलिए उन्होंने आव्हान किया :

वियाणिया दुक्खविवड्ढणंगणं
ममतबंधं च महब्भयं ।
सुहाव्हं धम्मधुरं जनुतरं,
धारेज्ज निव्वाण गुणवहं महं ॥

"धन को दुख बढ़ानेवाला, ममत्व-बन्धन का कारण और भयावह जानकर उस सुखावह, अनुपम और महान धर्मधुरा को धारणा करो, जो निर्वाण-गुणों को वहन करने वाली है।

हमारे दुःखों का मूल कारण मन की चंचलता है। सोते-जागते, उठते-बैठते, दिन-रात, मन दौड़ लगाता रहता है। उसे जितना दो, उतना ही वह और मांगता है। कभी सन्तुष्ट नहीं होता। उसकी चाह बढ़ती ही जाती है। इसलिए महावीर ने सबसे पहला कदम मन को वश में करने के लिए उठाया। उन्होंने घर में साधना की और समय आने पर सारी सम्पदा और वैभव को त्याग, राजसत्ता को तिलांजलि दी और मन को नियंत्रित करके पूर्ण स्वतंत्रता अर्जित करने के लिए कठोर साधना के मार्ग पर चल पड़े। वस्त्रों तक का त्याग, एकान्त-वास, खान-पान की उपेक्षा, ध्यान में तल्लीनता आदि-आदि उनके प्रयास उसी दिशा के थे। मन पर जैसे-जैसे नियंत्रण होता गया, वैसे-वैसे प्रकाश से जगमगाते एक नूतन लोक में वह प्रविष्ट होते गये।

सब जानते हैं कि मन की सबसे अधिक उछलकूद उस समय होती है, जब कि वह किसी भी प्रकार के मद से आक्रान्त होता है। बीते युग की स्मृतियाँ और भविष्य की कल्पनाएँ मानवमन को सतत आलोड़ित करती रहती हैं। महावीर ने उन स्मृतियों और कल्पनाओं के दुष्चक्र से अपने मन को मुक्त करने का उपक्रम किया और ज्यों-ज्यों उनसे उनका नाता टूटता गया,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनका मन निर्भीक होता गया। बारह बर्ष के उनके साधनाकाल की कैसी-कैसी भयंकर घटनाएँ पढ़ने को मिलती हैं। पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मेरी मान्यता है कि उन पर हाथी, नाग आदि के जो आक्रमण हुए, वे उनके अपने विकार ही थे। व्यक्ति विकार-ग्रस्त तभी होता है, जब उसका मन उसके नियंत्रण में नहीं होता। महावीर के मन के नियत्रित होते ही उनके विकारों के लिए कोई स्थान न रहा। अत: यह स्वाभाविक ही था कि निराश्रय हो जाने पर विकारों ने कुपित होकर महावीर को भयंकर-से-भयंकर यातनाएँ पहुँचाई थीं। नाग आदि तो प्रतीक मात्र थे। महावीर को अपने विकारों से किस हद तक जूझना पड़ा होगा, उसकी सहज ही कल्पना नहीं की जा सकती।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह समाज में रहता और जीता है। किसी के साथ उसका राग होता है, किसी के साथ द्वेष। जिन्हें वह प्रेम करता है, जो उसके काम आते हैं, उनके साथ उसका राग होता है; जिनसे वह घृणा करता है, जो उसे सहयोग नहीं देते, उनके प्रति वह द्वेष रखता है। लेकिन महावीर का मन जैसे ही नियंत्रण में आया उनके लिए अपने और पराये का भेद जाता रहा, सब उनके अपने हो गये, सबके साथ उनका आत्मीयता का नाता जुड़ गया। वह वीतराग और वीत-द्वेष हो गये। उनके अन्तस् में सबके प्रति प्रेम का निर्मल-पावन स्रोत फूट उठा। सबके साथ समता-भाव स्थापित हो गया। उन्होंने कहा :

"राग-द्वेष ऐसे दो पाप हैं, जो सारे पाप कर्मों को जन्म देते हैं।"

"राग द्वेष को पैदा करने में शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श ये पाँच वस्तुएँ विशेष सहायक होती हैं।" महावीर ने उस सम्बन्ध में मानव की दुर्बलता को ध्यान में रखकर मार्ग सुझाते हुए कहा।

"शब्द श्रोतेन्द्रिय का विषय है। कान में पड़े हुए शब्दों को न सुनना शक्य नहीं। काम में पड़े हुए शब्दों में राग-द्वेष का परित्याग करो।

"रूप चक्षु का विषय है। आँखों के सामने आये हुए रूप को न देखना शक्य नहीं। आँखों के सामने आये हुए रूप में राग-द्वेष का परित्याग करो।

"गन्ध नाक का विषय है। नाक के समीप आयी हुई गन्ध को न सूँघना शक्य नहीं। नाक के समीप आई हुई गन्ध में राग-द्वेष का परित्याग करो।

"रस जिह्वा का विषय है। जिह्वा पर आये हुए रस का आस्वाद न लेना शक्य नहीं। जिह्वा पर आये हुए रस में रागद्वेष का परित्याग करो।

"स्पर्श शरीर का विषय है। स्पर्श का विषय उपस्थित होने पर उसमें राग-द्वेष न करो।"

देश-काल के अनुसार सन्दर्भ बदलते रहते हैं, युग नया परिवेश धारण करता है। लेकिन शाश्वत मूल्यों में कभी परिवर्तन नहीं होता। भगवान महावीर ने जिन मूल्यों की प्रतिष्ठा की, वे शाश्वत हैं। उनका आरम्भ वैयक्तिक जीवन से होता है। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि का समावेश जब तक व्यक्ति के जीवन में नहीं होगा, वे समाज में प्रविष्ट हो ही नहीं सकते। इसीलिए कहा गया है कि वैयक्तिक साधना समाज का अधिष्ठान बनती है।

भगवान महावीर के 2500 वें निर्वाण महोत्सव को मनाने की योजना बनाते समय एक कमी यह रह गयी कि महावीर के सिद्धान्तों को समाज में स्थापित करने पर जितना बल दिया गया, उतना व्यक्ति के जीवन में उन्हें स्थापित करने पर नहीं दिया गया। यही कारण है कि पूरा वर्ष बीत जाने पर भी हमारे प्रयत्नों का प्रत्यक्षतया विशेष परिणाम सामने नहीं आ पाया।

सन्दर्भ कितने ही बदलें लेकिन महावीर के सिद्धांत हिमालय की तरह अटल हैं, गंगा की तरह पावन हैं। अत: हम स्मरण रखें कि भगवान महावीर को जब तक अपने आन्तरिक जीवन में प्रतिष्ठित नहीं करेंगे तब तक न हमारा मंगल हो सकता है, न समाज का, न राष्ट्र का।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org